स्वच्छता
मनुष्यता का
गौरव
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

स्वच्छता
मनुष्यता का गौरव

लेखक

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

गायत्री नगर, श्रीरामपुरम्-शांतिकुंज, हरिद्वार

(उत्तराखण्ड) पिन-249411

पुनरावृत्ति सन् 2015 मूल्य- 5/-

स्वच्छता मनुष्यता का गौरव

मनुष्य के प्रारम्भिक गुणों में स्वच्छता का प्रथम गौरव है। दूसरे जीवों में इस प्रवृत्ति की कमी पाई जाती है। वे अपने शरीर एवं निवास- स्थान को उतना स्वच्छ नहीं रख पाते जितना एक सुरुचिपूर्ण प्राणी के लिए आवश्यक है। मनुष्य की अनेक विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि वह मलीनता से घृणा करता है और स्वच्छता से प्रेम। स्वभावतः उसे सफाई पसन्द है। नाक और आँख इस सम्बन्ध में उसे सदा सतर्क करती रहती हैं। गन्दगी देखने में अप्रिय लगती है। जैसे ही हम किसी गन्दी, घिनौनी चीज को देखते हैं, चित्त में घृणा उत्पन्न होती है और उसे सुधारने या छोड़ने की इच्छा होती है। गन्दी चीजों का स्वरूप ही घृणित नहीं होता, वरन् उसे स्पर्श करके बहने वाली वायु भी दुर्गन्धित होती है। नाक तुरन्त ही उसे पहचान लेती है। दुर्गन्ध सूँघते ही घृणा होती है और उस वस्तु से दूर हटने को मन करता है। इसका तात्पर्य है कि मानव-प्रकृति ईश्वर ने ऐसी बनाई है जिसके अनुसार उसे गन्दगी को दूर करने व स्वच्छता अपनाने की प्रेरणा मिलती रहे।

इस ईश्वर प्रदत्त गुण का हमें अधिकाधिक विकास एवं सदुपयोग करना चाहिए। इसी में मनुष्यता का गौरव एवं सम्मान है। हमारी रुचि ऐसी परिष्कृत होनी चाहिए जिसमें गन्दगी असह्य हो उठे। स्वच्छता प्राप्ति के लिए कितना ही श्रम करना पड़े तो भी संकोच न हो। हम यह अनुभव करें कि स्वच्छता जैसी श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए जो कष्ट सहा जाय, जो भी खर्च किया जाय वह कम ही है क्योंकि स्वच्छता से होने वाली आत्म तुष्टि की तुलना में गन्दगी हटाने की कठिनाई ओर व्यय नगण्य मानी जायगी।

स्वच्छता और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध

स्वच्छता का स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। आरोग्य को नष्ट करने के जितने भी कारण हैं, उनमें गन्दगी प्रमुख है॥ बीमारियाँ गन्दगी में ही पलती हैं। जहाँ कूड़े-कचरे के ढेर जमा रहते हैं, मल-मूत्र सड़ता है, नालियों में कीचड़ भरी रहती है, सीलन और सड़न बनी रहती है, वहीं मक्खी, पिस्सू, खटमल जैसे बीमारियाँ उत्पन्न करने वाले कीड़े उत्पन्न होते हैं। उन्हें मारने की दवायें छिड़कना तब तक बेकार है, जब तक गन्दगी को हटाया न जाय। दवा आदि से इन्हें मारा जाय तो भी क्या हुआ। पैदावार न रुके तो अगले दिनों वे उतने ही और पैदा हो जाते हैं, जितने मारे या हटाये गये थे। कहना न होगा कि हैजा, मलेरिया, दस्त, पेट के कीड़े, चेचक, खुजली, रक्त-विकार जैसे कितने ही रोग इन मक्खी, मच्छर जैसे कीड़ों से ही फैलते हैं। मलेरिया का विष मच्छर फैलाते हैं, मक्खियाँ हैजा जैसी संक्रामक बीमारी की अग्रदूत हैं। प्लेग फैलाने में पिस्सुओं का सबसे बड़ा हाथ रहता है। खटमल खून पीते ही नहीं वरन् रक्त को विषैला भी करते हैं। इन कीड़ों के द्वारा पग-पग पर जो कष्ट होता है, सुविधा और बेचैनी उठानी पड़ती है, उसका कष्ट तो अलग ही दुःख देता रहता है।

निवास-स्थान तथा उसके आस-पास गन्दगी का रहना स्वास्थ्य के लिए स्पष्ट खतरा है। गन्दगी जितनी निकट आती जाती है, उतनी ही उसकी भयंकरता और बढ़ती जाती है। आग की तरह वह जितनी समीप आवेगी उतनी ही अधिक घातक बनती जायगी। कपड़े मैले-कुचैले होंगे तो उनकी दुर्गन्ध और कुरुपता हर किसी को अखरेगी। वस्त्र चाहे कितना ही कीमती क्यों न हो , यदि मैला-

कुचेला होगा तो उसकी कीमत देखने वाले की आँखों में दो कौड़ी की भी न रहेगी क्योंकि वह बेजान, बेजवान होते हुए भी पहनने वाले की, अपने मालिक की भरपेट चुगली कर रहा होगा, कह रहा होगा-मेरा कीमती होना भी इस गन्दे आदमी ने बेकार बना दिया।

मनुष्यता का प्रथम चिह्न-मनुष्यता के प्रथम चिह्न स्वच्छता की ओर हमें अधिक तत्परता के साथ आगे बढ़ना चाहिए। इस दिशा में जितनी प्रगति हो सकेगी उतना ही यह समझा जायेगा कि पशुता को छोड़ा जा रहा है। स्वच्छता में मानवता का सम्मान है। भले ही कोई व्यक्ति निर्धन हो, अभाव के कारण घटिया, कम या फटे-चिथड़े पहन कर दिन गुजारता हो पर यदि उसके वस्त्र धुले हुए हैं, सलवट हटाने के लिए दबाये हुए है, फटी हुई जगह पर सिले हुए हैं, करीने से पहने हुए हैं, बटन ठीक लगे हुए हैं तो आर्थिक गरीबी में भी दिल की अमीरी का इजहार कर रहे होंगे। ऐसा मनुष्य आर्थिक दृष्टि से अभाव-ग्रस्त सिद्ध होते हए भी व्यक्तित्व की दृष्टि से अपनी महत्ता अक्षुण्ण रख रहा होगा। वह दूसरों की सहानुभूति का पात्र तो हो सकता है, घृणा का नहीं।

शरीर, वस्त्र, घर, सामान इन सभी क्षेत्रों में जो मलीनता पाई जाती है उसका कारण कोई भौतिक कठिनाई नहीं, मनुष्य का घटिया व्यक्तित्व ही एकमात्र कारण होता है। फुरसत न मिलना, नौकर न होना, घर के अन्य लोगों का ध्यान न देना आदि बहाने हो सकते हैं, तथ्य नहीं। तथ्य यह है कि स्वच्छता का मूल्य एवं महत्व नहीं समझा गया। उसके अभाव में होने वाली हानि को नहीं जाना गया। यदि जाना जाता तो बहानेबाजी का रास्ता अपनाने की अपेक्षा, आलस्य छोड़कर, गन्दगी को हटाने के लिए परिश्रम किया होता।

इसमें समय एवं श्रम भी उतना नहीं पड़ता, आवश्यकता केवल सतर्कता की होती है। शारीरिक आलस्य जितनी गन्दगी फैलाता है, उससे ज्यादा मानसिक आलस्य का हाथ होता है। मन में गन्दगी के प्रति घृणा नहीं होती तो वह जमकर बैठने लगती है। यदि मन में सतर्कता रहे और यह भावना बनी रहे कि गन्दी में लिपट कर हमें अपना व्यक्तित्व ओछा नहीं बनाना है, तो अवश्य ही यह सूझता रहेगा कि कहाँ मलीनता एकत्रित हो गई और उसे किस प्रकार दूर किया जाय? जब तक हमें किसी बात का लाभ समझ में नहीं आता, तब तक हम उसे करने के लिए तैयार नहीं होते। सच बात यह है कि न तो हमने गन्दगी की हानि को समझा है और न स्वच्छता के लाभ को जाना है। इसलिए मनोभूमि ऐसी बन गई है कि उसे गन्दगी के साथ समझौता कर लेने जैसी कहा जा सकता है।

आँख के आगे कूड़े-करकट के ढेर लगे रहते हैं पर वे खटकते नहीं, घर में नाली, पाखाना, पेशाबघर बुरी तरह सड़ते रहते हैं वे अखरते नहीं। कपड़े गन्दे-गलीज रहते हैं पर उनमें कोई बुराई नहीं लगती। सामान बिखरा, अस्त व्यस्त पड़ा रहता है पर उसे सुव्यवस्थित रखने की सूझ सूझती ही नहीं। जैसा कुछ ढर्रा चल रहा है, चलता रहता है। छतों में मकड़ी के जाले हों पर उन्हें हटाने की कभी इच्छा नहीं होती। दीवाल-तिखलों में अनावश्यक कूड़ा-कबाड़ा भरा रहता है पर यह विचार नहीं किया जाता कि इसकी क्या उपयोगिता है? पुरानी, टूटी, रद्दी, बेकार, निकम्मी चीजें घर के कौने में भरी रहती हैं। वे जो कभी किसी काम में आने वाली नहीं है, ऐसी चीजें ढेरों जगह घेरे पड़ी रहती हैं और अपनी छाया में गन्दगी के पर्त जमा करती रहती हैं। यदि दृष्टिकोण परिष्कृत हो और ऐसा कबाड़ी की दुकान जैसा घर अनुपयुक्त लगे तो यह सूझ सूझेगी

ही कि क्या चीज रखे जाने योग्य है, क्या हटाये जाने योग्य। किस सामान के लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त और कौन-सा अनुपयुक्त। यह सुरुचि जागृत हो और हर वस्तु यथास्थान-सुव्यवस्थित ढंग से रखने पर उत्पन्न हाने वाली सुन्दरता अन्त:करण को आकर्षित करती हो तो कोई कारण नहीं कि वह उत्साह न उठे जिसके कारण बात ही बात में वह सारा कबाड़खाना एक सुरुचिपूर्ण सद्गृहस्थ के सुरम्य निवास का रूप धारण न कर ले।

चोर वहाँ सेंध लगाते हैं, जहाँ उन पर किसी की निगाह न पड़ती हो। सोते हुए बेखबर लोगों के घरों में ही अक्सर चोरी होती है। जो जागते रहते है, सावधान रहते हैं, चोरों के प्रवेश न होने देने के बारे में सावधानी बरतते हैं, उनके यहाँ चोरी कदाचित् ही होती है। गन्दगी के सम्बन्ध में भी यही बात है। जो उसकी उपेक्षा करते हैं, हटाने का प्रबन्ध नहीं करते, आलस और उदासीनता का दृष्टिकोण अपनाये रहते हैं, उनके घर में धीर-धीरे मलीनता जमा होती चली जाती है, पर जिनकी आँखों में वह इतनी अखरे कि एक क्षण भी बर्दाश्त न कर सकें, उसे हटाना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझें तो फिर यह सम्भव नहीं कि वहाँ गन्दगी के पैर जम सकें।

रक्त में ऐसे श्वेत कण होते हैं, जो बाहर से रोग कृमि प्रवेश होते ही उनसे लड़ने को तैयार हो जाते हैं और उन्हें मार भगाने के लिए तत्काल संघर्ष ठान लेते हैं। शरीर में जब तक यह क्रिया चलती रहती है, तब तक बीमारियाँ पैर नहीं जमाने पातीं, पर जब रक्त के श्वेत कण निर्बल हो जाते हैं और रोग कीटाणुओं से उतनी तत्परता पूर्वक लड़ नहीं पाते तो फिर रोगों का अड्डा शरीर में जमने लगता है। गन्दगी एक प्रकार से रोगकृमियों की सेना ही है। उसे

हटाने की तीव्र प्रतिक्रिया जब तक हमारे स्वभाव का अंग बनी रहती है, तब तक उसके पैर टिकना सम्भव नहीं होता। अवांछनीय तत्वों से संघर्ष न हो तो वे कभी भी हटने का नाम न लें। शत्रुओं को, गुण्डे-बदमाशों को यदि प्रतिरोध का भय न हो तो वे अपनी करतूतें बढ़ाते ही चले जायेंगे। इसलिए आत्म -रक्षा के लिए संघर्ष करना मनुष्य का आवश्यक धर्म कर्तव्य माना गया है। इस कर्तव्य को जो छोड़ देगा, उसके लिए जीवित रह सकना कठिन हो जायगा। गन्दगी की लानत द्वारा जिसे अपना गौरव नष्ट होने से बचाना हो, उसे संघर्षशील होना ही होगा, जहाँ भी गन्दगी दिखाई पड़े वहीं भिड़ जाना होगा। उसे जब तक हटा न दिया जाय चैन न पड़े, तुरन्त जाय, कोई सहायक न मिले तो अकेला ही जुट पड़े। तब ही यह सम्भव है कि स्वच्छता का गर्व, गौरव एवं आनन्द उपलब्ध किया जा सके।

गन्दगी हटाने में उत्साह रहे

कई व्यक्ति गन्दगी से घृणा तो करते हैं, पर उसे हटाने से कतराते हैं। यह घृणा का विलक्षण तरीका है। चोर से घृणा तो की जाय पर जब वह घर में घुसे तो उससे दूर ही खड़ा रहा जाय, ऐसा करने से चोर को हटाया जाना कैसे सम्भव होगा? घर में कहीं बिल्ली ने टट्टी कर दी है अथवा चूहा मरा पड़ा है या कोई और ऐसी ही बात है, आप उसे छूने या हटाने से झिझकते हैं तो फिर वह गन्दगी हटेगी कैसे? मलीनता से घृणा करना उसी का सार्थक है, जो उसे हटाने के लिए जुट जाए। जिससे ऐसा न बने उसके बारे में तो यही कहा जायगा कि स्वच्छता से घृणा नहीं करता है। यदि ऐसा न होता ता गन्दगी को हटाने के लिए अपने शत्रु को खदेड़ने के वास्ते तत्परता प्रदर्शित क्यों न करता?

होना यह चाहिए कि जहाँ भी गन्दगी दिखाई दे, हम तत्काल एक क्षण भी बिना गँवाए उसे हटाने के लिए जितना अधिक उत्साही एवं सक्रिय रहेगा उसे उतना ही स्वच्छ रहने का आनंद मिलेगा। जो सफाई तो चाहते हैं पर मैलेपन को हटाने से कतराते हैं, वे भला किस तरह अपनी अपनी चाहना को साकार बना सकेंगे? जहाँ कूड़ा-करकट देखा कि बुहारी लेकर उसे झाड़ने में तुरन्त जुट गए, जहाँ सामान अस्त-व्यस्त देखा, वहाँ तुरन्त उसे यथास्थान रखने में लग गये, यह स्वभाव जिसका बन जाय, समझना चाहिए कि उसे स्वच्छता प्रिय मनुष्य का सम्मान मिलेगा। जो गन्दगी को देखकर कुड़कुड़ाता तो है, नाक भी सिकोड़ता है, पर उससे बचता-बचता फिरता है, छूना नहीं चाहता, हटाने में गन्दगी के सम्पर्क में आना पड़ता है, उससे बचता है। वह स्वच्छता का नहीं, घृणा उपासक कहा जायगा। स्वच्छता तो एक वरदान है जो उसे मिलता है जिसे गन्दगी से लड़ने की साधना करने में उत्साह रहे।

गाँधी जी के साबरमती आश्रम में यह नियम था कि आश्रमवासी टट्टियाँ स्वयं साफ करें, दूसरे स्थानों की गन्दगी भी स्वयं हटावें। यह नियम उन्होंने इसलिए बनाया था कि आश्रमवासी अपनी स्वच्छता की अभिरुचि परिष्कृत करने की, मानवता की प्रथम परीक्षा को भली-भाँति उत्तीर्ण कर सकें। कोई यह पूछता था कि यह कार्य मेहतर से क्यों न कराया जाय? तो वे यही उत्तर देते थे कि ऐसा करने पर अपनी गन्दगी को हटाने की परिष्कृत अभिरुचि का विकास न हो सकेगा और केवल शौचालय में ही नहीं वरन् अपने कार्यालय में भी आप गन्दगी के ढेर लगाये रहेंगे, इसलिए स्वच्छता के लिए गन्दगी हटाने की तत्परता आपको एक आध्यात्मिक एवं नैतिक साधना की तरह ही करनी चाहिए।

गन्दगी में इतना ही दोष नहीं है कि उससे बीमारियाँ फैलने का डर है या देखने में कुरुपता प्रतीत होती है। यदि इतनी ही हानि होती तो उसे सहन भी किया जा सकता था। यह भौतिक हानियाँ मात्र थीं, उनकी एक सीमा तक उपेक्षा भी की जा सकती है। बड़ी हानि तो स्वभाव के दूषित होने की है। गन्दगी सहने की आदत जिसे पड़ गई, उसका कोई कार्यक्रम व्यवस्थित नहीं रह सकता। अव्यवस्था उसके स्वभाव का अंग बन जाती है। जो भी काम करता है, वे अधूरे, बेतरतीब, लँगड़े-लूले, टूटे-फूटे बने रहते हैं। आदि से अन्त तक वह एक भी काम को यथावत् नहीं कर पाता, फलस्वरूप उसका प्रतिफल भी संदिग्ध ही रहता है। अभी एक कार्य आरम्भ किया, वह पूरा न होने पाया कि दूसरा आरम्भ कर दिया, वह भी समेटा नहीं कि तीसरा शुरु हो गया। यह मानसिक अस्त-व्यस्तता ही गन्दगी की जननी है। क्या घर का सामान, बिस्तर, कपड़े, बर्तन, पुस्तक, क्या उपार्जन-अध्ययन का कार्यक्रम दोनों में एक स्वभाव काम करता है। घरों में यही होता है कपड़ा उतारा, उसे यथास्थान ठीक तरह रखने से पूर्व ही दूसरा काम शुरु कर दिया, कपड़ा या बर्तन जहाँ का तहाँ पड़ा रहा, नया काम चल पड़ा। गर्मी में बाहर से आये हैं, पंखा झलने लगे, पानी पीकर गिलास एक ओर पटक दिया, कपड़े उतार कर इधर-उधर डाल दिये और दूसरे काम में लग गये। अव्यवस्था इसी प्रकार बढ़ती है। बच्चे यही सब तो करते रहते हैं। वे हर काम अधूरा छोड़ते हैं। यह बचपन जिनके स्वभाव का अंग बन गया है, वे दफ्तर में या दुकान में क्या लोक-व्यवहार में, हर जगह ऐसी ही अस्त-व्यवस्थतता बरतते हैं। हर काम अधूरा-जिसकी

गति-विधियाँ इस प्रकार चल रही हों उसे बड़े कामों में तो क्या, दैनिक छोटे-छोटे कामों में भी पग-पग पर असफलता का मुँह देखना पड़ता है।

अधूरे काम गन्दगी के अम्बार

जो काम आरम्भ किया उसका अन्त करके ही दम लेना, कोई काम अधूरा न छोड़ना, यह दृष्टिकोण स्वच्छता का आधार है। लापरवाही हटाकर उत्तरदायित्व की भावना जिस व्यक्ति ने अपना स्वभाव बनाया होगा, वह यह बात कैसे सहन कर सकेगा कि उसका कोई काम अधूरा पड़ा रहे और वह दूसरों के सामने उसके फूहड़ होने कि चुनौती प्रस्तुत करे। एक काम आदि से अन्त तक पूरा करना, जब जो काम हाथ में लिया हो तब उसे पूरा करके दूसरा आरम्भ करना यदि यह आदत डाल ली जाय तो फिर अस्त-व्यस्तता जो गन्दगी का ही एक रुप है- उत्पन्न न हो सकेगी। कोई बहुत बड़ा काम हो, उसे खण्ड-खण्ड करके पूरा करना हो या कोई अनायास ही आकस्मिक कार्य सामने आ जाय, यह बात दूसरी है। उसके लिए तात्कालिक हेर-फेर किया जा सकता है। यह अपवाद है। साधारणतया आदत ऐसी ही डालनी चाहिए कि जब जो काम करना हो उसे पूरा करके उठा जाय। कपड़े, बर्तन, पुस्तकें, जूते आदि को पहले ठीक तरह यथास्थान रखकर तब दूसरा काम आरम्भ किया जाय तो हर चीज यथास्थान रखी मिलेगी और घर में कूड़ा-करकट कहीं भी दिखाई न पड़ेगा। जहाँ भी जो चीज अव्यवस्थित रखी दिखाई पड़े, उसे सम्भालना ऐसी आदत है जिसके कारण इस तरह की भूलें होते रहना बन्द हो जाती हैं और गृह-व्यवस्था में कोई अनावश्यक-व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। तब सोचने का ढंग यह

बन जाता है कि एकाध घण्टे पीछे जो सफाई फजीहत एवं नाराजी के साथ की जाती है, उसे पहले से ही क्यों न कर लिया जाय? यह प्रश्न जब बार-बार मन में उठता रहता है तो फिर ढील पोल का स्वभाव भी बदल जाता है। घर का प्रमुख व्यक्ति जब स्वच्छताप्रिय स्वभाव का होता है, गन्दगी हटाने में उत्साहपूर्वक सावधानी बरतता है तो उसका अनुकरण परिवार के दूसरे लोगों को भी करना पड़ता है। वैसी आदत घर-भर को पड़ जाती है। किन्तु यदि परिवार प्रमुख व्यक्ति आलसी, लापरवाह और फूहड़ आदतों का होगा और स्वयं गन्दगी पैदा करता रहता होगा तो घर-भर में वही बुराई छूत की बीमारी की तरह पनपेगी और सारा घर गन्दगी के ढेर की तरह दिखाई देगा।

सफाई सभ्यता का अंग

सीधी सच्ची बात है कि जब तक हमारे घर, द्वार और रास्ते गन्दे रहेंगे, हमारी आदतें गन्दी रहेंगी तब तक हम अपने आपको सभ्य और सुसंस्कृत नहीं कह सकते। आज पूरा भारत और भारतीय समाज गन्दगी का अखाड़ा बन गया है, इस बात से न हम इन्कार कर सकते हैं न आप। गाँवों की गलियाँ गन्दी हैं, सड़कों के किनारे गन्दे हैं,लोगों के पाखाने जाने और पेशाब करने के तौर-तरीके गलत हैं, इतना ही नहीं, आज जीवन के हर क्षेत्र में गन्दगी प्रवेश कर गई है। सोचने और व्यवहार करने का तरीका भी गन्दा हो गया है। दूषित मनोवृत्ति और दूषित वातावरण के रहते, भले ही लोगों का धर्म और दर्शन कितना ही गौरवपूर्ण एवं प्राचीन क्यों न हो, उन्हें कोई सम्मान नहीं दे सकता। श्रेष्ठता और संस्कृति का पहला गुण स्वच्छता है। हम साफ रहकर ही अपने आदर्श सिद्धातों की रक्षा कर सकते हैं।

सफाई प्रकृति का एक मौलिक गुण है। स्वच्छता और पवित्रता धर्म का प्रमुख अंग माना जाता है तो उसका सही-सही ज्ञान भी होना आवश्यक है। शिक्षा और संस्कृति के साथ सफाई का स्वास्थ्य से भी अटूट सम्बन्ध है पर आजकल लोगों ने सफाई के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण बड़ा संकुचित कर लिया है। शरीर की, वस्त्रों की और घर के भीतरी कमरों की साज-सज्जा का तो पूरा ध्यान रखते हैं, हमें यह भी देखना पड़ेगा कि मनुष्य के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में सफाई का आर्थिक, सामाजिक ओर नैतिक दृष्टि से क्या स्थान है? हमने सफाई को आध्यात्मिक जीवन का मुख्य पहलू माना है तो उसे एक निश्चित क्षेत्र में ही सीमित नहीं रख सकते हैं। समाज के सर्वांगीण हित की दृष्टि से सफाई के बुनियादी तथ्यों तक पहुँचना पड़ेगा। गन्दगी के कारण जानने होंगे और उनका निवारण भी करना होगा।

शहरों में मकानों के जो अहाते होते हैं या नालियाँ होती हैं वहाँ तरह-तरह के कचरे के ढेर पाये जाते हैं। बच्चे रास्तों में किनारों पर टट्टी कर जाते हैं, पाखानों से नालियाँ पाट जाते हैं। कचरे के ढेर में जूठन, मरे चूहे, थूक, बच्चों के पाखाने के साथ-साथ खाली-फूटी शीशियाँ, डिब्बे, घड़ों के ठीकरे, कागज, चीथड़े, टूटे-फटे झाड़ू, कंघे, काँच के टुकड़े, दातूनों की चीरियाँ, केले के छिलके, तरकारी के डण्ठल हर तरह की परित्यक्त और गन्दी वस्तुओं का मेला लगा रहता है।

गाँव के लोग खुले स्थानों में, खेतों में, मेड़ों में गलियारों के दोनों तरफ, गाँवों के भीतर के टूटे-फूटे मकानों में पाखाना कर देते हैं। कई गाँवों में तो नाक बन्द करके ही प्रवेश करना पड़ता है। खुले

में किये पाखाने की बदबू हवा में फैलती है और उससे बीमारी फैलती है। मल पर मक्खियाँ बैठती हैं और फिर वही मक्खियाँ लोगों के शरीर तथा खाने-पीने की वस्तुओं पर बैठती हैं। वही खाना लोग खाते हैं तो मक्खियों के द्वारा लाई हुई गन्दगी पेट में पहुँच जाती है और हमारे लिए बीमारी का साधन बन जाती हैं।

किसी रेल्वे-स्टेशन पर जाकर चक्कर लगा आयें। प्लेटफार्म पर थोड़ी देर रुककर रेलगाड़ी चली जाती है तब वहाँ क्या दिखाई देता है ? रेल की पटरियों पर ढेर सारा पाखाना-पेशाब, प्लेटफार्म पर कुल्हड़ के टुकड़े, बीड़ी सिगरेट के सुलगते हुए टुकड़े, पान की पीक, फलों के छिलके यही सब तो सफर करने वाले यात्री छोड़ जाते हैं। भला बताइये यह भी कोई सभ्यता हुई कि आप तो चले गये, वहाँ पर रुकने वालों, रहने वालों के लिए रोग, बीमारी और मौत की दवा छोड़ते गये।

गंदगी यत्र-तत्र-सर्वत्र

सिनेमा हालों में भारी संख्या में दर्शक पहुँचते हैं। इण्टरवल होता है तो दर्शकों का हजूम भीतर से निलकता और टिड्डी दल की तरह सिनेमा बिल्डिंग के आसपास फैल जाता है। पैशाब-घर होते हुए भी खुले में, दीवालों के सहारे पेशाब कर जाते हैं।

शहरों में लोग ऊपर स्टाल पर, होटलों में बैठकर भोजन करते हैं, नीचे नाली में टट्टी बहती रहती है। दुकानदारों का पेशब घर भी वही नाली होती है। बचा हुआ जूठन, बर्तनों की धोवन भी वहीं पटकते रहते हैं। कुल मिलाकर भोजनालय के नीचे एक भरा-पूरा दुर्गन्धालय बन जाता है। इन दोनों का सम्बन्ध मक्खियाँ जोड़ देती हैं और रोग के कीटाणुओं का निर्यात प्रारम्भ हो जाता है।

ऐसी गन्दगी हर शहर, हर गाँव में देखने को मिलती है और उससे प्रति वर्ष हैजा, मलेरिया, प्लेग, क्षय और अनेक तरह के स्त्रियों तथा बच्चों के रोग फैलते हैं, पर इस सामूहिक बुराई के प्रति लोग अपने व्यक्तिगत कर्तव्य पालन के लिए तैयार नहीं होते।

मल-मूत्र की सफाई ऐसा मोटा विषय है, जिसके लिए लोगों के शिक्षित-अशिक्षित होने का सवाल ही नहीं उठता। कुत्ता जहाँ बैठता है उस स्थान को पहले पंजों से साफ कर लेता हैं, बिल्ली हमेशा किसी धूल वाले स्थान के पास टट्टी करती है और टट्टी होने के बाद उसे रेत से ढक देती है। जंगली बिलाव अपने निवास स्थान से बहुत दूर टट्टी जाते हैं। मधुमक्खियाँ दिन में दो बार सामूहिक रुप से छत्ते से उड़ती हैं और बड़ी देर तक बाहर उड़ती हुई टट्टी कर लेती है। यह छोटे-छोटे जीव-जन्तु यदि गन्दगी के प्रति इतने सावधान रहते हैं तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य भी सफाई का प्रबन्ध न कर सके। पर अपनी गन्दी आदत के कारण वह इस घिनौनी शक्ल को मिटाने की इच्छा नहीं करता अथवा यह कहना चाहिए कि गन्दगी उसकी प्रकृति में मिल गई है और उसे वह बुरी नहीं लगती।

कुछ को बुरी न लगे, न सही पर समाज में दूसरे लोग भी तो होते हैं जिनको सफाई प्यारी होती है, स्वास्थ्य प्रिय होता है। सफाई का महत्व सामाजिक दृष्टि से भी समझना चाहिए। सफाई का समाज में महत्वपूर्ण स्थान हैं। इसके बिना समाज टिक नहीं सकता। अतः जिस प्रकार व्यक्तिगत जिन्दगी में अन्य सामाजिक नियमों को स्थान दिया जाता है ठीक उसी तरह मल-मूत्र की स्वच्छता को भी सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य अंग मानकर आचरण करना चाहिए।

स्वच्छता सांस्कृतिक सद्गुण

सफाई मनुष्य जीवन और मानवीय सभ्यता का अविभाज्य अंग है। हिन्दू धर्म ही नहीं, हर एक धर्म में सफाई की और निर्देश करने वाले आचार वर्णित हैं। अंग्रेजी में कहावत है-"सज्जनता के बाद स्वच्छता का ही स्थान है।" रस्किन ने शिक्षा की व्याख्या करते हुए लिखा है कि -"हवा, पानी और मिट्टी का ठीक ढंग से उपयोग करना ही शिक्षा है।"

मोहन जोदड़ों की खुदाई से ज्ञात होता है कि ईसा से २००० वर्ष पहिले भी सफाई के लिए नालियाँ होती थीं। क्लोसास तथा ट्राय के पराजय से पूर्व ही मिश्र के पुराने शहरों में भी नालियों का उपयोग किया जाता था। हिन्दु-धर्म में तो शुचिता को प्रमुख स्थान ही दिया गया है, पर आजकल हमारे सामूहिक जीवन में गन्दगी ने पूरी तरह डेरा डाल लिया है। सफाई की जरूरत जीवन में आरंभ से अन्त तक है इसलिए उसका बुनियादी प्रशिक्षण भी लोगों को मिलना चाहिए, आरोग्य के लिए भी सफाई बहुत जरूरी है। बड़े रोगों और बुखार, खुजली तथा छोटे रोगों का असली कारण अस्वच्छता ही है, उसे दूर करके ही हम स्वास्थ्य संरक्षण कर सकते हैं।

हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता की रक्षा करनी है तो सफाई पर ध्यान देना ही होगा, स्वास्थ्य और आरोग्य की रक्षा के लिए भी वह आवश्यक है। आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए भी सफाई का सर्वोपरि महत्व है। इसलिए उसकी व्यावहारिक जानकारी भी बहुत आवश्यक है।

गन्दगी रोग की जननी

खुले स्थानों पर या नालियों के किनारे लगे हुए कूड़े-कचरे के ढेर और पाखाने पर कभी दृष्टि दौड़ाने का अवसर मिले और खुर्दबीन की सहायता से ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उसमें सर्प के बच्चे जैसा एक छोटे से आकार का रेंगता हुआ जीव हर किसी को देखने को मिल सकता है। इसका वर्ण केंचुए जैसा मलिन और किंचित लाल जैसा होगा। यह छोटा-सा जीव पाखानों की गन्दगी में आमतौर पर जन्म ले लेता है पर चूकि लोग उन स्थानों से निकलते समय दुर्गन्ध और घृणा से उधर से मुँह फेर लेते हैं, इसलिए उनके दर्शन नहीं हो पाते और न ही लोगों को इसके कारनामों का पता चल पाता है।

यह शुण्डाकार जीव नर और मादा दोनों रुपों में पाये जाते हैं। नर को चूँकि प्रसव का कष्ट नहीं उठाना पड़ता इसलिए वह आकार में काफी छोटा होता है। डाक्टरों का ऐसा अनुमान है कि इस जाति की प्रत्येक आसन्न प्रसव गर्भिणी के गर्भ में लगभग पौने तीन करोड़ जीव होते हैं। यह जीव कितने छोटे होते होंगे इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मल-मूत्र का आर्थिक महत्व, उसका सदुपयोग

आजकल विकसित देशों में मल-मूत्र का खाद के लिए बहुत अच्छा उपयोग किया जाता है। साधारणतया एक फसल उगाने के बाद जमीन का नाइट्रोजन तत्व कम पड़ जाता है। फास्फोरिक एसिड तथा पोटाश की कमी से भी उपजाऊपन कम हो जाता है। यह तीनों तत्व मानवीय मल-मूत्र से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। जापान के सरकारी कृषि केन्द्रों से प्रसारित आँकड़ों में दिखाया

गया है कि वहाँ प्रति व्यक्ति वर्ष भर में १२० पौण्ड मल और ७०० पौण्ड मूत्र इकट्ठा होता है। इस मल में नाइट्रोजन, फास्फोरिक एसिड तथा पोटाश की मात्र क्रमश: १२० पौण्ड, ४१ पौण्ड होती है। यह मात्रा प्राकृतिक साधनों से प्राप्त किये गये तत्वों का दशांश होती है। इससे मालूम होता है कि मनुष्य का मल-मूत्र कृषि के लिए खाद की बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा कर सकता है।

मल एक सुन्दर खाद

भारतवर्ष में कृषि के लिए खाद का प्रमुख स्त्रोत जानवर हैं। जानवरों के गोबर का भी ५० प्रतिशत भाग तो ईंधन के रुप में फूँक दिया जाता है और मूत्र को इकट्ठा करने की व्यवस्था न होने से वह भी प्राय: बेकार चला जाता है। देश की जनसंख्या बढ़ेगी और मशीनों का बाहुल्य होगा तो जानवरों की संख्या पर निश्चित रुप से असर पड़ेगा, वे क्रमश: कम होते जायेंगे। इससे खेती के लिए खाद की समस्या भी बढ़ेगी। इसका कोई खास हल अभी से किया जाना चाहिए, अन्यथा खाद्य की प्रचण्ड समस्या को हल करना और भी कठिन हो जायेगा।

पाश्चात्य जगत के इंग्लैण्ड, नार्वे, स्वीडन आदि देशों में मनुष्य के मल-मूत्र को खाद के रुप में प्रयुक्त किये जाने के सफल प्रयोग हुए हैं। १९४४ में डॉक्टर रिचर्डसन ने जो ६ वर्ष तक चीन में रहे और कृषि सम्बन्धी अनुसन्धान किये, भारत में अपने एक व्याख्यान में बताया कि चीन ने अपनी जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाई है, इसमें गोबर की खाद का उतना महत्व नहीं जितना उन्होंने मनुष्य के मैले का उपयोग किया है। उन्होंने कहा-"यदि चीन आदमी के मैले का उपयोग नहीं करता तो वह इतनी बड़ी आबादी

को जीवित भी नहीं रख सकता था।" "चालीसवीं सदी के किसान" नामक पुस्तक के रचयिता मिस्टर किंग ने भी चीनी, कोरियन तथा जापानियों द्वारा मल-मूत्र का प्रयोग कर कृषि की उपज बढ़ाने का उल्लेख किया है। मिस्टर किंग अपने समय के विश्व विख्यात कृषि विशेषज्ञ माने जाते थे।

इसे बर्बाद न करें तो

भारतवर्ष में खाद देने वाले जानवरों की अपेक्षा मनुष्यों की संख्या दुगुनी मानी जाती है। इससे मनुष्यों के मल-मूत्र का खाद के रूप में उपयोग किया जा सके तो उससे खाद और खाद्य दोनों ही समस्याओं को हल करने में आशातीत सफलता मिल सकती है। इस बात की ओर सन् १९३५ के लगभग बोएलकर तथा लेधर नामक भारतीय कृषि विभाग के दो बड़े अधिकारियों ने सरकार का भी ध्यान आकर्षित किया था। उनका कहना था कि खाने की फसलें उगाने के लिए जमीन को जितने द्रव्य की आवश्यकता होती है उसका आधा भाग मुनष्य के मल-मूत्र से बड़ी आसानी से पूरा हो सकता है।

इन्होंने यह भी सिद्ध किया था कि यदि मल-मूत्र की खाद को इस्तेमाल किया जाय तो उससे सालभर में प्रतिव्यक्ति ६०० रुपये की अधिक फसल उगाई जा सकती है। यदि एक गाँव की आबादी ५०० की औसत से मानी जाय तो प्रत्येक गाँव में ३ लाख रुपये की अधिक फसल उगाई जा सकती है। भारतवर्ष में गाँवो की कुल संख्या ५६७१६९ है। इस हिसाब से कुल अधिक उपज की कीमत निकालें तो वह १ अरब ७० करोड़ १५ लाख ७ हजार के बराबर बैठती है। इतना धन हमारी कितनी भी बड़ी से बड़ी खाद्य समस्याओं को आसानी से पूरा कर सकता है।

हमारी कठिनाइयाँ

सूरगाँव (वर्धा) में इस तरह का प्रयोग किया गया है। पहले वर्ष एक खेत में बिना कुछ खाद दिये हुए धान बोया गया। दूसरे वर्ष उसी में मल-मूत्र की खाद देकर धान बोया गया। दोनों फसलों की पैदावार का अनुपात निकाला गया तो यह देखा गया कि मल-मूत्र की खाद उपज को डेढ़ गुना अधिक तक बढ़ा देती है। यह अनुपात गोबर की खाद की उपज से किसी भी प्रकार कम नहीं है। इस निष्कर्ष पर पहुँचकर मल-मूत्र की उपयोगिता सहज ही समझ में आ जाती है।

हमारे लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि मल-मूत्र को कृषि से संबंधित करने में धार्मिक बुराई मानते हैं पर यदि ऐसा ही सोचा जाय तो फिर गाँवों के अधिकांश व्यक्ति खेतों में ही पाखाना करते हैं, उन्हें ऐसा न करना चाहिए। वस्तुतः हम जिसे मल कहते हैं उसे यदि खुले में ही छोड़ दिया जाय और वह सूखी मिट्टी की लपेट में रहे तो कुछ दिन के सम्पर्क से ही उसमें ऐसा रासायनिक परिवर्तन होता है कि वह सारा मल मिट्टी के रूप में बदल जाता है। खुला रहने के कारण दुर्गन्ध के साथ तो उसकी बहुमूल्य उपजाऊ शक्ति उड़ ही जाती है। यदि उसे मिट्टी से ढक देने की प्रक्रिया देहातों में प्रारंभ कर दी जाय तो उसी मल को प्रकृति बड़े मजे से खाद में बदल देती है। जब मल प्राकृतिक रुप से धरती का ही अंग बनकर उसी में मिल जाता है तो उसमें धार्मिक बुराई जैसी कोइ बात समझ में नहीं आती।

लोगों की ऐसी भी मान्यता है कि मल के खाद्य का फसलों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। चीन में भी कुछ दिन लोगों की ऐसी ही धारणा रही कि मल का खेती में उपयोग करने से बीमारी फैलती है।

पर यदि मल को एक ढंग से प्रयोग में लाया जाय, अर्थात् पूरी तरह गल जाने के बाद ही उसका खाद के रुप में उपयोग किया जाय तो हानि की कोई संभावना नहीं रहती। महात्मा गाँधी के आश्रम में जब वे थे तभी से विभिन्न फसलों में मैले की खाद का उपयोग किया जाता रहा, और भी कई संस्थानों ने ऐसे प्रयोग किये पर उससे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला कि मैले की खाद का खाद्य पर अथवा उसके सेवन करने वालों पर कोई बुरा असर पड़ता हो।

गन्दगी निवारण के रचनात्मक उपाय

"स्वर्ग" शब्द में जिन गुणों का बोध होता है, सफाई और शुचिता उनमें सर्व प्रमुख है। पर चूँकि लोगों की यह मान्यता है कि स्वर्ग कहीं अन्यत्र शून्य में, बहुत दूर बसा हुआ है और वहाँ केवल जीवन-मुक्त आत्माएँ ही पहुँच सकती हैं, हम स्वर्ग का विवेचन नहीं करना चाहते। हम जिस युग-निर्माण योजना को लेकर राष्ट्र के आध्यात्मिक तथ्यों को पुनः जागृत हुआ देखना चाहते हैं, उनका उद्देश्य भी स्वर्ग की कल्पना को स्पर्श करता है पर यह स्वर्ग ऊपर आसमान में नहीं, यहीं इस धरती पर जहाँ हम रहते हैं, होना चाहिए। इसलिए हम जब स्वर्ग की व्याख्या करेंगे तो उसका सम्बन्ध अपने मनुष्य समाज को ही "देव-समाज" बनाना होगा।

देव समाज की रचना

देवता जहाँ रहते हैं वहाँ सफाई, स्वच्छता, शुचिता पवित्रता, सुगन्ध, सौन्दर्य ओर निर्मलता प्रमुख रुप से रहती हैं। यह बातें जहाँ पर होंगी स्वभावतया वहाँ प्रसन्नता, निरालस्यता, प्रेम, सद्भाव, सहयोग, कर्मठता, सहिष्णुता उदारता आदि गुण भी होने चाहिए। जहाँ यह गुण व्यापक मात्रा में विद्यमान होंगे वहाँ सुख, शांति, संतोष,

समृद्धि और सम्पन्नता का होना भी अनिवार्य है। हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन का उद्देश्य भी तो यही है कि हम सुखी बनें, शांतिपूर्वक जीवन जियें और किसी बात का अभाव न रहे।

तो फिर धरती पर स्वर्ग अवतरित करने का प्रारंभ सफाई और स्वच्छता से ही होना चाहिए। गन्दगी चाहे शरीर की हो, कपड़ों या घर की हो, भली नहीं होती, उससे मनुष्य का जीवन अपवित्र ही बनता है। पर सामूहिक गंदगी का रूप तो और भी बुरा है। मल-मूत्र की समस्या को इसीलिए सफाई की समस्या से पृथक किया गया है। हमारे देश में गन्दगी न बढ़ने देने के सामाजिक कर्तव्य का लोग पालन नहीं करतें, जहाँ-तहाँ पेशाब-पाखाना कर देते हैं। इससे गन्दगी बढ़ती है, रोग बढ़ते हैं और इनके साथ ही परेशानी, गरीबी और निर्धनता भी बढ़ती है। अतः अपने कर्तव्य के पालन में प्रत्येक नागरिक को जागरुक रहना चाहिए। एक व्यक्ति का अकर्तव्य भी सामाजिक बुराई को जन्म दे सकता है अतः हमें सामूहिक रूप से कर्तव्यों के पालन पर ध्यान देना चाहिए।

सफाई हमारा स्वभाव बने

मल-मूत्र की समस्या, यदि लोग अपना स्वभाव ठीक कर लें तो कोई बड़ी समस्या नहीं है। जो लोग शहरों में रहते हैं उन्हें पाखानों का नियमित इस्तेमाल करना चाहिए। जहाँ-तहाँ नालियों में, दुकान के नीचे, मोटर स्टैण्ड के अगल-बगल, प्लेटफार्म की बिल्डिंगों के पीछे, शहर के बीच जहाँ रेलवे लाइनें गुजरती हैं पाखाना या पेशाब नहीं करना चाहिए। पेशाब और पाखानों के लिए शहरों में टट्टी और पेशाबघर बने होते हैं। स्टेशनों, बस अड्डों पर भी मुसाफिरों के लिए शौचालय बने रहते हैं, उन्हीं में पेशाब और पाखाना करना

चाहिए। प्राय: लोग उन्हें ढूँढने की दिक्कत नहीं उठाना चाहते हैं इसीलिए इधर-उधर टट्टी-पेशाब कर देते हैं। ऐसा न करने की आदत प्रत्येक नागरिक को निभानी चाहिए।

स्त्रियाँ सोचें, समझें और करें

मातायें बच्चों को नालियों के सहारे बैठाकर टट्टी करा देती हैं। वे अनुभव करती हैं कि इस तरह वे टट्टी उठाकर फेंकने की परेशानी से बच जाती हैं पर उन्हें यह भी मालूम होना चाहिए कि यह गन्दगी उन्हीं के बच्चों के लिए हानिकारक होती है। कोमल शरीर के बच्चों पर ही रोग के कीटाणुओं का जल्दी असर होता है। थोड़ा सावधानी के साथ बच्चों को भी पाखानों में टट्टी करा ली जाया करे या बाहर कराकर इसे किसी ऐसे स्थान पर डाल दिया करें जहाँ से मेहतर उसे साफ कर ले जाया करें, तो इसमें कोई बड़ी परेशानी नहीं होती।

सामाजिक कार्यकर्ताओं के कर्तव्य

शहरों की मल-मूत्र समस्या को बहुत शीघ्र नियंत्रण में लिया जा सकता है पर गाँवों की समस्या कुछ अधिक दुरुह है। गाँवों की अधिकांश जनता अनपढ़ होने से वे लोग किसी बात की उपयोगिता उतनी जल्दी नहीं समझते। तो भी युग-निर्माण आन्दोलन के कर्मठ कार्यकर्ता यदि आवश्यक प्रशिक्षण एवं जानकारी देने के लिए कटिबद्ध हो जायें तो वहाँ भी मल-मूत्र की समस्या को शीघ्र ही काबू किया जा सकता है।

पहला कार्य यह है कि लोगों को मल-मूत्र की गन्दगी से पैदा होने वाले रोग और बुराइयों की जानकारी दी जाय। नम्बर दो-उन्हें मल-मूत्र की उपयोगिता समझाई जाय और उसे खाद के रूप में

प्रयोग करने को तैयार किया जाय। दो कार्यक्रम सैद्धांतिक हुए। इसके बाद रचनात्मक कार्यक्रमों का आन्दोलन उठाना चाहिए।

पहला तरीका यह है कि लोग खेतों पर पाखाना करें, तालाबों के आसपास की जमीन में या गाँव के किनारे रास्तों में मैला न फैलायें, पाखाना जाते समय लोग अपने साथ खुरपी लेकर जायें और गड्ढा खोदकर उसमें पाखाना करें बाद में उसे मट्टी से ढक दें। इससे वह मल कुदरती तौर पर खाद बन जाता है।

जमीनी छप्परों का घेरा डालकर सामूहिक पाखाना तैयार किये जायें। इनकी गहराई इतनी होनी चाहिए जिससे एक पाखाना कम से कम एक वर्ष या छः महीने तक तो काम दे ही जाय। पाखाने के लिए बैठने की लकड़ी को काटकर इस तरह तैयार किया जाय कि दोनों पैरों को रखने के लिए दो मजबूत पट्ठे बने रहें और उनके बीच में मल विसर्जन के लिए काफी चौड़ाई से उसे काट दिया जाये। इस प्रकार एक पाखने को घेर दिया जाय ताकि एक साथ दस-बारह व्यक्ति भी अगर पाखाने को बैठें तो इसमें कोई परेशानी न आये। पाखाने पुरुषों के लिए अलग, स्त्रियों के लिए अलग हों।

बच्चों के लिए बाल्टी की टट्टियाँ बनवा ली जाँय और वे मकान के ऐसे कोने में हों जहाँ से दुर्गन्ध न फैले। बैठने के लिए कुर्सीनुमा लगाना चाहिए और जब एक बार बच्चा पाखाना फिर ले तो उसे मिट्टी या राख से ढक देना चाहिए ताकि बदबू न फैले।

ज्ञातव्य

हमारा देश गाँवों में बसा है। हमारे गाँवों का यदि विकास होगा तो ही राष्ट्र समर्थ व सशक्त बनेगा। गाँव स्वच्छ, स्वावलम्बी, संस्कारवान तथा सुन्दर कैसे बनें? इस हेतु युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव ने अपना मार्गदर्शन निम्नलिखित पुस्तकों में दिया है-

१. हमारे गाँवों का कायाकल्प कैसे हो?
२. गंदगी की घृणित असभ्यता।
३. स्वच्छता मनुष्यता का गौरव।
४. प्रगतिशील स्वावलम्बन।
५. अवांछनीय प्रचलनों को उलटने की आवश्यकता।
६. अंधविश्वास से लाभ कुछ नही हानि अपार।
७. खाद्यान्न संकट और उसका हल।
८. राष्ट्रीय प्रगति के कुछ अनिवार्य मापदण्ड।
९. मूढ़-मान्यताओं की भूल-भुलैया में न अटके।
१०. एकता समता की ओर।
११. वृक्षारोपण एक पुनीत कार्य।
१२. मानव प्रगति एवं पर्यावरण।
१३. प्राण घातक व्यसन।

ग्राम्य विकास तथा ग्रामोत्थान की योजनाओं को क्रियान्वित करने हेतु शांतिकुंज के रचनात्मक प्रकोष्ठ ने ग्राम प्रबंधन विषय पर मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण हेतु निम्न पुस्तकें प्रकाशित की है-

१. ग्रामोत्थान की ओर।
२. गौ-पालन एवं गौशाला प्रबंधन।
३. आर्थिक स्वावलम्बन भाग-१, २, ३।
४. केंचुआ खाद संदर्शिका।

गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार